

बी0 एड0 – दूरस्थ शिक्षा

स्व-अनुदेशात्मक सामग्री

खण्ड – एक

प्रश्न पत्र-3 (तृतीय)

बी0एड0 प्रथम वर्ष

भाषा की भूमिका

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय भोपाल (म.प्र.)

खण्ड-1 भाषा की भूमिका

इकाई-1 भाषा का एवं प्रकृति

इकाई-2 भाषा के विकास की युक्तियाँ

इकाई लेखक

डॉ0 चंदा मोदी

सहायक प्राध्यापक,
विक्टोरिया कॉलेज ऑफ एजुकेशन, भोपाल

इकाई— 1 भाषा की प्रकृति एवं उपयोग

संरचना

परिचय

उद्देश्य

1. भाषा की प्रकृति एवं कार्य
 - 1.2 भाषा की विशेषताएं
 - 1.3 भाषा का महत्व
 - 1.4 भाषा के आधार
 - 1.5 भाषा के रूप
2. मानक भाषा एवं बोलचाल की भाषा
 - 2.1 बोली एवं भाषा
 - 2.2 बोलियों के बनने के कारण
 - 2.3 बोलियों के महत्व पाने के कारण
2. मानक भाषा
 - 2.1 मानक भाषा हिन्दी
 - 2.2 आधुनिक मानक भाषा हिन्दी का महत्व
3. भाषा एवं संस्कृति
 - 3.1 भाषा का स्वरूप
 - 3.2 भाषा के विविध प्रकार
 - 3.3 भाषा की विशेषताएं
3. संस्कृति
 - 3.1 संस्कृति का अर्थ एवं विशेषताएं
 - 3.2 भाषा पर संस्कृति का प्रभाव
 - 3.3 संस्कृति पर भाषा का प्रभाव
4. भाषा का बोलना एवं लिखना
 - 4.1 बोलना
 - 4.2 बोलने के उद्देश्य
 - 4.3 बोलने के भेद
 - 4.4 बोलने की विधियाँ
 - 4.5 बोलने संबंधी दोष व सावधानियाँ

- 4. लिखना**
 - 4.1 लिखने के उद्देश्य
 - 4.2 लिखना सिखाने के नियम
 - 4.3 लिखना सिखाने की विधियाँ
 - 4.4 लिखने संबंधी दोष एवं सुझाव
- 5. प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा**
 - 5.1 भाषा के रूप
 - 5.2 प्रथम भाषा के उद्देश्य
- 5. द्वितीय भाषा**
 - 5.1 द्वितीय भाषा के उद्देश्य
 - 5.2 प्रथम और द्वितीय भाषा के शिक्षण की प्रक्रिया एवं तकनीकी
 - 5.3 द्वितीय भाषा के शिक्षण में आने वाली बाधाएं
- 6. घर एवं स्कूल में बोली जाने वाली भाषा**
 - 6.1 घर एवं स्कूल में बोलने वाली भाषा में संतुलन हेतु सुझाव
- 7. इकाई सारांश**
- 8. दीर्घ एवं लघु प्रश्न**
- 9. इकाई के उत्तरों की जाँच**

परिचय— भाषा की प्रकृति एवं उपयोग खण्ड की प्रथम इकाई है। इसमें भाषा की प्रकृति एवं उसके कार्यों का वर्णन विस्तारपूर्वक किया है साथ ही इकाई के अनुरूप बोलचाल की भाषा, मानक भाषा एवं संस्कृति के बारे में उल्लेख किया गया है। इसी इकाई में घरों में बोली जाने वाली प्रथम भाषा (मातृ भाषा) द्वितीय भाषा का वर्णन करते हुए घर एवं स्कूल में बोली जाने वाली भाषा को भी समझाया गया है।

उद्देश्य — इस इकाई के निम्न उद्देश्य हैं :-

- (1) विद्यार्थी भाषा की प्रकृति एवं कार्यों को समझ सकेंगे।
- (2) सामान्य बोलचाल की भाषा और मानक भाषा का अंतर समझ सकेंगे।
- (3) विद्यार्थी भाषा और संस्कृति के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- (4) विद्यार्थी प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा में अपने विचारों को व्यक्त करने की विधा सीख सकेंगे।

भाषा की प्रकृति एवं उपयोग

(Nature and use of Language)

1. भाषा की प्रकृति एवं कार्य (Nature and Functions of Language)

साधारणतया “भाषा” शब्द का प्रयोग विचारों अथवा भावों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त उन सभी साधनों के लिए होता है, जो चेतन प्राणियों एवं जड़ पदार्थों में देखे एवं सुने जाते हैं। उदाहरण के लिये मानव परस्पर विचार विनिमय के लिए जिन ध्वनि संकेतों को अपनाते हैं, वे सभी भाषा कहलाते हैं।

अतः भाषा मानव-भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। यह विचार-विनिमय का साधन है। यह भाव, विचार, अनुभव आदि को व्यक्त करने का सांकेतिक साधन है। ‘भाषा’ शब्द की रचना संस्कृत भाषा के “भाषा” धातु से हुई है जिसका अर्थ है ‘व्यक्ताया वाचि’। वस्तुतः भाषा शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है एक संकुचित व दूसरा व्यापक संकुचित अर्थ में। भाषा शब्दमयी है व्यापक अर्थ में अभिव्यक्ति-माध्यममयी है जिसका तात्पर्य है कि वह शब्दों, संकेतों आदि सबको अपने में समाहित कर लेती है। भाषा-ध्वनि, लिपी का संकेत रूप है।

1. महर्षि पतंजलि के अनुसार— “भाषा वह व्यापार है, जिससे हम वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।”

2. काव्यादर्श के अनुसार— “यह समस्त तीनों लोक अन्धकारमय हो जाते, यदि शब्द रूपी ज्योति (भाषा) से यह संसार प्रदीप्त न होता है।”

3. शास्त्रीय अर्थों में— “विचार की अभिव्यक्ति के लिए समाज द्वारा स्वीकृति जिन व्यक्त वर्णों, ध्वनि संकेतों का व्यवहार होता है, उसे “भाषा” कहा जाता है।”

“श्री रामचन्द्र वर्मा ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है—“मुख से उच्चरित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह जिसके द्वारा मन की बात बलाई जाती है, भाषा कहलाती है।” गहन अध्ययन करने से पता चलता है कि भाषा में मूलभूत बातें मुख्य रूप से पाँच हैं—

(1) भाषा एक विचार विनिमय का साधन है।

(2) भाषा निश्चित प्रयत्न के फलस्वरूप मनुष्य के उच्चारण अवयवों से निःसृत ध्वनि समष्टि होती है।

(3) भाषा में यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीक (Arbitrary Vocal Symbol) होते हैं। अतः में प्रयुक्त ध्वनि समष्टियाँ (शब्द) सार्थक तो होती हैं किन्तु उनका भावों या विचारों से कोई सहजात सम्बन्ध नहीं। यह सम्बन्ध यादृच्छिक या माना हुआ होता है, किसी

शब्द का अर्थ मात्र परम्परा के कारण यों ही किसी नियम का कारण आदि से मान लिया गया है।

(4) भाषा में एक व्यवस्था (System) होती है। भाषा अव्यवस्थित नहीं है।

(5) एक भाषा का प्रयोग एक विशेष वर्ग या समाज में होता है। उसी में वह बोली और समझी जाती है।

अतः इन समस्त मुख्य बातों को समाहित करने वाली परिभाषा विश्वकोश ब्रिटैनिक ने इस प्रकार दी हैं, “भाषा, उच्चारण अवयवों से उच्चरित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।”

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि भाषा में ध्वनि संकेतों का प्रयोग होता है। इन ध्वनि संकेतों से भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति होती है, ये ध्वनि संकेत रुढ़ तथा परम्परागत होते हैं, परन्तु आवश्यकतानुसार नये भी बनते हैं। साथ ही प्रत्येक वर्ग एवं समाज के ध्वनि-संकेत दूसरे वर्ग या समाज के ध्वनि संकेतों से प्रथक होते हैं।

1.2 भाषा की विशेषताएं

(1) भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है— कुछ लोग समझते हैं कि भाषा पैतृक सम्पत्ति है लेकिन ऐसे अनेक, ठोस प्रमाण मिलते हैं कि यदि किसी बालक को दुर्भाग्यवश कोई पशु उठाकर ले जाये तो गूँगा न होते हुए भी वह मनुष्य की तरह नहीं बोल पाता। यदि भाषा पैतृक सम्पत्ति होती तो विदेश में रहकर पलने वाले बालक बिना प्रयास के हिन्दी समझ और बोल लेते लेकिन ऐसा नहीं होता। अतः स्पष्ट है कि भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है।

(2) भाषा अर्जित सम्पत्ति है—भाषा सम्पर्क, अभ्यास और अनुकरण से आती है। भारत में उत्पन्न बालक यदि रूस, अमरीका या फ्रांस भेज दिया जाये तो चारों ओर से समाज का वातावरण से वह वही की भाषा सीख आयेगा। यदि भारत में रहकर उसका पालन-पोषण हुआ होता तो वह भारतीय भाषा बोलना सीख जाता। अतः भाषा अर्जित सम्पत्ति है।

(3) भाषा सामाजिक वातावरण से सम्बन्धित है—प्रत्येक बालक जहाँ अनेक समाजनिष्ठ आचरण समाज में रहकर सीखता है वहाँ भाषा भी समाज से ही सीखता है और उसका प्रयोग भी समाज में करता है व शिष्ट भाषा बोलना सीखता है।

(4) भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है— भाषा सम्पर्क द्वारा तो आती ही है लेकिन बहुधा छोटा बालक बड़ों को बोलते हुए सुनकर भाषा बोलना अनुकरण द्वारा

सीख जाता है। अनुकरण प्रवृत्ति प्रत्येक बालक में बड़ी सशक्त होती है और इस गुण के कारण ही वह शीघ्रतिशीघ्र भाषा सीख जाता है।

(5) भाषा गतिशील तथा परिवर्तनशील होती है— यदि हम भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करें तो मालूम होगा कि भाषा में समय के साथ बहुत से परिवर्तन होते रहते हैं इस कारण लोग इसे भाषा का विकास कहते हैं और कुछ विकार, यह तो दृष्टिकोण का अंतर मात्र है। यह निश्चित है कि भाषा चिरपरिवर्तनशील है।

(6) भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं है — भाषा कभी पूर्ण नहीं हो पाती। यह कभी नहीं कहा जा सकता है कि अमुक भाषा का यह अमुक रूप अंतिम है। किसी मृत भाषा का अंतिम रूप हो सकता है लेकिन जीवित भाषा तो समाज में रहकर विकसित रहती है।

(7) भाषा की धारा स्वभावतः कठिनता से सरलता की ओर जाती है — समस्त भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि सभी भाषाओं में कठिनता में सरलता की ओर जाने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

(8) भाषा का संबंध परम्परा से होता है — यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी द्वारा ग्रहण की जाती है। इसके मूल रूप में थोड़ा-बहुत परिवर्तन तो कर सकते हैं। परन्तु इसमें आमूल— चूल परिवर्तन या बिलकुल नई भाषा का सृजन एक साथ नहीं कर सकते हैं।

(9) भाषा अभिव्यक्ति का एक सांकेतिक साधन है — भाषा के रूप में प्रयुक्त संकेतों द्वारा समाज के सदस्य अपने भाव प्रकाशित व आपसी विचार—विनिमय करते हैं।

(10) भाषा व विचार अटूट संबंध होता है — विचार के अभाव में भाषा का कोई मूल्य नहीं होता है। विचारों से ध्वनि उद्भूत होती है और ध्वनियों से विचार। विचार—प्रधान भाषा मनुष्य की विशेषता है। मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों में उनकी अपनी भाषा तो होती है, परन्तु विचार नहीं होते। इसलिये उनकी भाषा को कोई मूल्य नहीं होता है।

1.3 भाषा का महत्व,

भाषा के बिना मनुष्य पशु के समान है। भाषा के कारण ही मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। भाषा का आविष्कार एवं विकास वस्तुतः मनुष्य का विकास है। मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में भाषा के महत्व, उपयोग एवं कार्य को निम्न प्रकार समझा जा सकता है —

- (1) भाषा शिक्षा व ज्ञान का प्रमुख साधन— भाषा के माध्यम से ही एक पीढ़ी समस्त संचित ज्ञान सामाजिक विरासत के रूप में दूसरी पीढ़ी को सौंपती है। भाषा के माध्यम से ही हम प्राचीन और नवीन, विश्व को पहचानने की सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। भाषा के द्वारा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है।
- (2) भाषा विचार—विनिमय का सरलतम एवं सर्वोत्कृष्ट साधन— बालक जन्म के कुछ ही दिनों पश्चात परिवार में रहकर भाषा सीखने लगता है। यह भाषा वह स्वाभाविक एवं अनुकरण के द्वारा सीखता है। इसे सिखाने के लिए किसी अध्यापक की आवश्यकता नहीं होती है। यह विचार विनिमय का सर्वोत्तम साधन है।
- (3) सामाजिक जीवन में प्रगति का साधन— भाषा समाज के सदस्यों को एक सूत्र में बाँधती है। भाषा के माध्यम से ही समाज प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता है। भाषा जितनी विकसित होगी, समाज उतना ही विकासशील होगा। भाषा के माध्यम से समाज के नैतिक व्यापार ही सम्पन्न नहीं होते अपितु उसकी संस्कृति भी अक्षुण्ण रहती है। यह भाषा ही है जिसके आधार पर विभिन्न क्षेत्रों, विभिन्न जातियों एवं धर्मों के लोग मिल—जुलकर रहते हैं। वस्तुतः भाषा समाज को जोड़ने में सहायक है। अतएव यह कहा जा सकता है कि भाषा सामाजिक जीवन में प्रगति का साधन है।
- (4) व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक—भाषा व्यक्तित्व के विकास का महत्वपूर्ण साधन है। व्यक्ति अपने आन्तरिक भावों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तथा इसी अभिव्यक्ति के साथ अंदर छिपी शक्तियाँ अभिव्यक्त होती हैं। अपने विचारों एवं भावों को सफलतापूर्वक व्यक्त करना तथा अनेक भाषायें बोलना अच्छे व्यक्तित्व के लक्षण हैं। अतएव किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति जितनी स्पष्ट होगी उसके व्यक्तित्व का विकास भी उतना ही प्रभावशील ढंग से होगा।
- (5) भाषा राष्ट्र की एकता का आधार— समस्त राष्ट्र प्रशासन का संचालन भाषा के माध्यम से होता है। भाषा राष्ट्रीय एकता का मूलाधार है। इसके साथ ही कोई अन्य भाषा भी विभिन्न राष्ट्रों के बीच विचार—विनिमय, व्यापार एवं सांस्कृतिक आदान—प्रदान का साधन बनती है।
- (6) चिन्तन एवं मनन की स्त्रोत — हम भाषा के द्वारा ही विचारों का चिन्तन एवं मनन करते हैं। मानव अपने विचारों की ऊँचाइयों के कारण ही सभी प्राणियों में शिरोमणि समझा जाता है। विचारों की ऊँचाइयों के कारण ही आज मानव विभिन्न ग्रहों की जानकारी लेने में समक्ष है। विश्वशांति एवं मानव एकता के प्रयास निरंतर प्रयत्नशील है। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि विचार चिन्तन और मनन शक्तियों का विकास भाषा पर ही आधारित होता है।

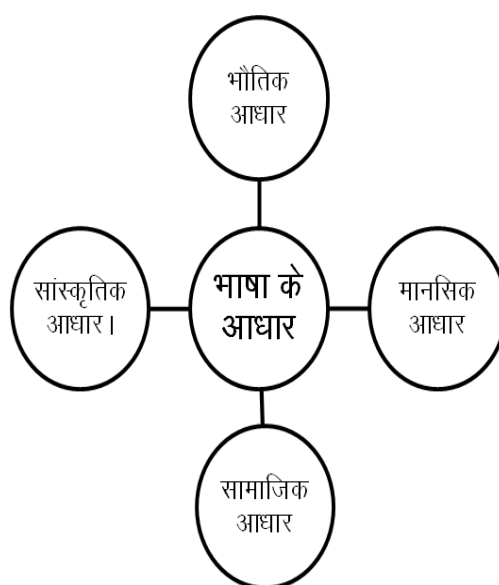
(7) शिक्षा की प्रगति की आधारशिला—भाषा, शिक्षा का आधार है। सभी ज्ञान—विज्ञान के ग्रन्थ भाषा में ही लिपिबद्ध होते हैं। अगर भाषा न होती तो भाषा के स्वरूप का भी निर्माण नहीं होता तथा यदि शिक्षा की व्यवस्था न होती तो मनुष्य असभ्य, हिंसक तथा जंगली रहा होता। भाषा के अभाव में पूर्वजों द्वारा उपलब्ध ज्ञान हमें कभी प्राप्त न होता है।

(8) साहित्य एवं कला, संस्कृति एवं सभ्यता का विकास— साहित्य भाषा में लिखा जाता है। भाषा का विकास उसके पल्लवित साहित्य के दर्पण में देखा जाता है। इसी तरह से कला के स्वर भी भाषा में मुखरित होते हैं। जब वायुमण्डल में स्वर गूँजते हैं तथा श्रोता गद्गद हो जाते हैं तो यह सारा चमत्कार भाषा का ही होता है। भाषा के द्वारा ही हम अपने समाज के आचार—व्यवहार, तथा अपनी विशिष्ट जीवन शैली से अवगत होते हैं और भाषा के द्वारा ही हम नवीन आविष्कारों के आधार पर एक नवीन सृष्टि का सृजन करते हैं और अपनी भाषा को उन्नत बनाते हैं।

(9) भाषा सभ्यता की कहानी हैं — यह सुस्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भाषा सभ्यता के निरंतर विकास की कहानी की रूपरेखा निर्धारित करती है।

1.4 भाषा के आधार

भाषा का व्यापक क्षेत्र है, भाषा की व्यापकता के साथ—साथ उसकी प्रकृति संबंधी विविधता भी अधिक है। इस व्यापकता एवं विविधता के अनेक आधार हैं, जिनका विवरण निम्नानुसार है :—



(1) भौतिक आधार— भाषा के दो प्रमुख तत्व हैं— ध्वनि एवं अभिव्यक्ति मुख के अंगों की सहायता से ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। भाषा ध्वनि संकेतों का समूह है। भाषा के उद्भव और विकास का श्रेय मनुष्य की विशिष्ट शारीरिक एवं मानसिक संरचना को है। शारीरिक रचना से ध्वनियाँ उत्पन्न होती है और मानसिक रचना से भाव, विचार तथा संवेग उत्पन्न होते हैं। वाचन और लेखन से भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति की जाती है जिसे भाषा कहते हैं।

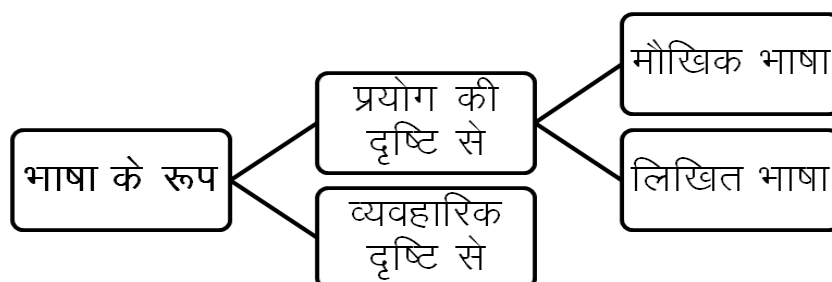
(2) मनोवैज्ञानिक आधार— भावों एवं विचारों का आदान-प्रदान का माध्यम भाषा है जिसका सम्बन्ध मनोदशा से होता है। मन भाषा उत्तेजन प्रतिक्रिया-ध्वनियों की एक श्रृंखला है। वाणी के माध्यम से मानसिक प्रत्ययों को दूसरे व्यक्तियों के मानसिक स्तर तक पहुँचाते हैं मानसिक उत्तेजना प्रभावपूर्ण-प्रतिक्रिया से ध्वनियों के माध्यम से भावों एवं विचारों का सम्प्रेषण होता है। मनुष्य के शब्दों से उसके व्यक्तित्व एवं मानसिक स्तर का बोध होता है।

(3) सामाजिक आधार—भाषा एक सामाजिक क्रिया है क्योंकि सभी सामाजिक कार्य तथा गतिविधियों में भाषा का ही उपयोग होता है। माननीय सम्बन्धों का आधार भाषा ही होती है। अपनी क्षेत्रीय भाषा के व्यक्तियों से अपनापन का अनुभव करते हैं। सामाजिक रचना तथा समाज में विचार-विनिमय की आवश्यकता ने भाषा को जन्म दिया है। यही कारण है कि विभिन्न स्थानों, क्षेत्रों एवं युगों में उत्पन्न भाषाओं में भिन्नता एवं विविधता पायी जाती हैं। भाषा का आधार सामाजिक अधिक है।

(4) सांस्कृतिक आधार— भाषा परिष्कृत संस्कृति पर आधारित होती है। संस्कृति एवं भाषा से समान प्रेम होता है जिससे व्यक्ति की पहिचान होती है। सांस्कृति विकास और अवनति उसकी भाषा और साहित्य के विकास एवं अवनति के साथ होती है। भाषा वास्तव में सांस्कृतिक तत्व है। सामाजिक कार्य एवं गतिविधियों से ही संस्कृति का निर्माण होता है। भाषा सम्पूर्ण संस्कृति के आचरण का आधार है। भाषा ही समुदाय के निर्माण का मूल आधार है। मानवीय ज्ञान समुदायों व संस्कृतियों की भाषाओं के अध्ययन से ही होता है। भाषा से संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है।

1.5 भाषा के रूप

भाषा को दो रूपों में वर्गीकृत किया जा सकता है :-



(1) प्रयोग की दृष्टि से (2) व्यवहारिक दृष्टि से

1. प्रयोग की दृष्टि से भाषा के रूप हैं –

(1) मौखिक भाषा – मौखिक भाषा का प्रयोग हम अपनी बोलचाल की भाषा में हर समय करते हैं। प्राचीन काल में समस्त ज्ञान मौखिक रूप से ही सुरक्षित रहा है।

(2) लिखित भाषा— जब हम अपने मौखिक विचारों को किसी भी लिपि में लिखकर दूसरों तक पहुंचाते हैं, तो इसे लिखित भाषा कहते हैं। भाषा का लिखित रूप अधिक स्थायी माना जाता है।

व्यावहारिक दृष्टि से भाषाओं को निम्न वर्गों में रखा जा सकता है –

1. मूल भाषा— मूल भाषा को प्राचीन भाषा भी कह सकते हैं। मूल भाषाएं आधुनिक भाषाओं की जननी हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि जो भाषा किसी भाषा परिवार की आदि जन्मदात्री होती है, उसे उस भाषा-परिवार की मूल भाषा कहते हैं। भारत की मूल भाषा संस्कृत कह जा सकती है।

2. मातृ भाषा— मातृ भाषा वह भाषा होती है जिसे कोई बालक अपनी माता का अनुकरण करके स्वाभाविक रूप से सीखता है।

3. प्रादेशिक भाषा – किसी प्रदेश विशेष में प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा को प्रादेशिक भाषा कहा जाता है।

4. बोली – एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ होती हैं। वास्तव में बोली भाषा का वह रूप होता है जो एक सीमित क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के द्वारा मौखिक रूप में प्रयोग किया जाता है। बोली को भाषा का पूर्ण दर्जा नहीं दिया जा सकता है।

5. सांस्कृतिक भाषा – किसी जाति, समाज या राष्ट्र की संस्कृति जिस भाषा में निहित रहती है, उसे सांस्कृतिक भाषा कहते हैं।

6. राष्ट्र भाषा— किसी राष्ट्र के निर्माण, विकास एवं भावात्मक एकता के लिए राष्ट्र भाषा का होना आश्यक है। राष्ट्र भाषा प्रायः वह भाषा होती है। जिसका प्रयोग उस राष्ट्रके अधिकतर व्यक्ति करते हैं।

7. जब किसी राष्ट्र की भाषा अन्य राष्ट्रों में भी लोकप्रिय तथा प्रचलित हो जाये कि उसका प्रयोग दूसरे राष्ट्र अपने विचार एवं भावों के विनिमय के लिए करने लगे तो उस भाषा को अंतर्राष्ट्रीय भाषा कहते हैं।

8. विदेश भाषा— वह भाषाएं जो अन्य देशों की भाषाएं हैं तथा उसदेश की मूल भाषा, संस्कृति भाषा तथा मातृ भाषा नहीं है, विदेशी भाषा कहलाती है।

अपनी प्रगति की जाँच करें।

नोट —

(अ) अपना उत्तर प्रश्न के नीचे दिये गये रिक्त स्थान में लिखिए।

(ब) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

प्र0-1 भाषा के कौन-कौन से आधार हैं ?

.....
.....

प्र0-2 भाषा के कितने रूप होते हैं ?

.....
.....

2. मानक एवं बोलचाल की भाषा (Dialect and standard Language)

2.1 बोली शब्द अंग्रेजी की डाइलेक्ट (Dialect) का प्रति शब्द है। किसी छोटे क्षेत्र की ऐसी व्यक्ति बोलियों का सामूहिक रूप है। जिनमें आपस में कोई स्पष्ट अंतर न हो, स्थानीय बोली या उपबोली कहलाती है। इसी प्रकार बहुत-सी मिलती-जुलती उप-बोलियों का सामूहिक रूप बोली है और मिलती-जुलती बोलियों का सामूहिक रूप भाषा है। अतः एक भाषा क्षेत्र में कई बोलियाँ होती हैं और एक बोली में कई उप बोलियाँ। किसी बोली के वर्णन में जब उसके पूर्वी, पश्चिम, दक्षिणी, मध्यवर्ती आदि

उपरूपों की बात करते हैं तो तात्पर्य होता है उपबोली से। भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि बोलियों में इस प्रकार की कई उपबोलियाँ हैं।

2.2 बोली एवं भाषा

बोली और भाषा संसार की समस्त विकसित भाषाएं अपने आरम्भिक रूप में बोलियाँ ही रही होंगी जैसे रूसी, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृति, ग्रीक व अरबी इत्यादि। अतः आज बोली कहलाने वाली ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली, इत्यादि भाषाएं आगे चलकर बन सकती हैं क्योंकि कोई भी बोली तभी तक बोली बनी रहती है जब तक उसे साहित्य, धर्म, व्यापार या राजनीति के कारण महत्व प्राप्त न हो जाये और दूसरे जब तक बोली इतनी विकसित न हो जाये अपनी विशेषताओं की दृष्टि से, कि पड़ोसी बोलियों से उसे भिन्न बना दे। इन दोनों में किसी एक या दोनों की प्राप्ति कर चुकने के पश्चात ही बोली भाषा बन जाती है।

1. भाषा का क्षेत्र अपेक्षाकृत बड़ा होता है और बोली का छोटा।
2. भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ हो सकती हैं भाषा बोली के अंतर्गत नहीं।
3. बोली भाषा से ही उत्पन्न होती है भाषा बोली में माँ-बेटी का सम्बन्ध है।
4. बोधगम्यता—यदि दो व्यक्ति ध्वनि रूप आदि की दृष्टि से एक ढंग से नहीं बोलते लेकिन एक-दूसरे की बात समझ लें अर्थात् पारस्परिक बोधगम्यता एक भाषा की कसौटी है तो समझ जाना चाहिए कि उनकी बोलियाँ किसी एक भाषा की बोलियाँ हैं।
5. बोली का प्रयोग साधारण बोलचाल में व लोक साहित्य सृजन में होता है जबकि भाषा का परिनिष्ठित रूप साहित्य, शिक्षा तथा शासन सम्बन्धी कार्यों में व्यवहार हेतु प्रयुक्त होता है।

2.3 बोलियों के बनने के कारण

बोलियों के बनने का एक कारण भौगोलिक होता है जैसे भूकम्प या जल प्लावन या अन्य किसी प्रकार से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायें कि एक क्षेत्र में रुकावट पड़ जाये, एक क्षेत्र के लोग आपस में मिल-जुल न सकें। यही कारण है कि बहुधा नदी के दोनों ओर की बस्तियों की बोलियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। एक भाषा की कई शाखाएं फूट कर अलग-अलग हो गयीं। भौगोलिक कारणों की वजह से लोग अलग-अलग जाकर बस गये और पारस्परिक सम्बन्ध सम्भव न रहा व आपस में बातचीत भी नहीं कर सकते थे परिणाम यह हुआ कि कालान्तर में समस्त शाखाओं में कुछ विशेषताएं विकसित हो गयीं और अलग-अलग बोलियाँ बन गयीं।

किसी भाषा की एक शाखा का अन्त से सम्बन्ध विच्छेद या अलग होना ही बोली के बनने का प्रधान कारण है। हिन्दी में अवधि, ब्रज, भोजपुरी आदि बोलियाँ इसी प्रकार विकसित हुई। कभी-कभी राजनैतिक या आर्थिक कारणों से कुछ लोग अपने भाषा क्षेत्र से बहुत दूर जाकर बस जाते हैं और वहाँ अपनी नई बोली विकसित कर लेते हैं। कभी-कभी आस-पास की भाषाओं के प्रभाव के कारण भी एक भाषा में एक क्षेत्रीय रूप विकसित हो जाता है और वह बोली का रूप धारण कर लेता है।

2.4 बोलियों के महत्व पाने के कारण— बोलियों महत्व पाकर धीरे-धीरे बोली से भाषा बन जाती है इसके कई कारण हैं —

1. कुछ बोलियाँ अन्य बोलियों से अलग हो जाने के कारण या पूरे क्षेत्र में अकेली बच जाने के कारण महत्वपूर्ण समझी जाने लगती हैं और इस तरह भाषा की कोटि में बोली आ जाती है।
2. साहित्य की श्रेष्ठतावश कुछ बोलियाँ महत्वपूर्ण हो जाती हैं।
3. धार्मिक श्रेष्ठतावश भी कभी-कभी बोली का महत्व बढ़ जाता है। उदाहरणार्थ, राम सम्बन्धी तीर्थ स्थान अयोध्या व अवधी बोली, कृष्ण सम्बन्धी तीर्थ स्थान व ब्रज की बोली इसलिए अवधी और ब्रज को अन्य बोलियों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण माना गया और कई सदियों तक ये बोलियाँ साहित्य की भाषा बन गयीं। ब्रज का तो नाम ही ब्रज भाषा हो गया। खड़ी बोली को महत्वपूर्ण बनाया आर्य समाज नामक धार्मिक संस्था ने।
4. अगर किसी बोली को कुछ महत्वपूर्ण लोग बोलने लगे तो वो भी बोली को महत्वपूर्ण बना देते हैं।
5. बोली को महत्वपूर्ण बनाने में राजनीति का बहुत बड़ा योगदान है जहाँ राजनीति का केन्द्र होगा वहाँ की बोली प्रायः भाषा, महत्वपूर्ण होने के कारण बन जाती है। दिल्ली के समीपकी खड़ी बोली आज हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों की प्रमुख भाषा है और उसने मैथिली, अवधी, भोजपुरी, ब्रज जैसी प्राचीन और महत्वपूर्ण बोलियों को भी दवा कर बोली से भाषा का रूप अपना लिया और राज एवं राष्ट्र भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया है।

अतः इस प्रकार एक भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ आती हैं। वास्तव में बोली भाषा का वह रूप होता है जो एक सीमित क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के द्वारा मौखिक रूप में प्रयोग किया जाता है। बोली को भाषा का पूर्ण दर्जा नहीं दिया जा

सकता है। एक भाषा के अंतर्गत जब कई अलग-अलग रूप विकसित हो जाते हैं, वे उन्हें बोली कहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा की बृज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देली आदि कई बोलियाँ हैं।

2.5 मानक भाषा (Standard Language)

भाषा के मानक रूप से क्या तात्पर्य है — भाषा के जिस व्याकरण-सम्मत, शुद्ध, स्थिर रूप को शिक्षित समाज के लोग व्यवहार में लाते हैं, जिस भाषायी रूप में समाचार पत्र, पत्रिकाएं और साहित्यिक ग्रंथ लिखे जाते हैं, उसे भाषा का मानका रूप कहते हैं।

अतः इस प्रकार मानक भाषा का अर्थ होगा। ऐसी भाषा जो एक निश्चित पैमाने के अनुसार लिखी, या बोली जाती है। मानक भाषा व्याकरण के अनुसार ही लिखी और बोली जाती है अर्थात् मानक भाषा का पैमाना उसका व्याकरण ही है।

2.5.1 मानक भाषा हिन्दी

अक्सर यह प्रश्न किया जाता है कि हिन्दी का मानक रूप क्या है, इसका आधार और मूल स्त्रोंत क्या है। भाषाविज्ञान की दृष्टि से पश्चिमी हिन्दी के अंतर्गत पाँच प्रमुख बोलियों में एक खड़ीबोली से हिन्दी का सीधा सम्बन्ध है। यह खड़ीबोली एक बड़े भू-भाग में बोली जाती है। अपने ठेठ रूप में यह रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, सहारनपुर, देहरादूर और अम्बाला जिलों में बोली जाती है। इनमें मेरठ की खड़ीबोली आदर्श और मानक मानी जाती है।

यह सच है कि पश्चिमी हिन्दी की खड़ीबोली का साहित्यिक या मानक रूप आज सारे देश में प्रचलित है, लेकिन वर्तमान अवस्था तक पहुँचने में उसे परिष्कार, संशोधन और समन्वय की अनेक स्थितियों से गुजरना पड़ा है। उन्नीसवीं शताब्दी से आजतक विगत डेढ़-दो सौ वर्षों में, खड़ी बोली का जो परिष्कार, परिशोधन और संस्कार हुआ है, वह मेरठ, दिल्ली और आगरा में बोली जानेवाली खड़ीबोली से काफी भिन्न हो गयी है। कुछ उदाहरण देकर इस अंतर को स्पष्ट कर उसका मानक रूप स्थिर किया जा सकता है।

1. मानक खड़ीबोली में द्वित्व ध्वनियों की प्रधानता नहीं है, किन्तु मेरठी अथवा पश्चिमी हिन्दी की खड़ीबोली में द्वित्व ध्वनियों का उच्चारण आज भी वहाँ के सामान्य लोग करते हैं जैसे—

पश्चिमी हिन्दी	मानक हिन्दी
गाड़ी	गाड़ी
धोत्ती	धोती

बेट्टी	बेटी
राण्णी	रानी
देक्खा	देखा
जात्ता	जाता
रोट्टी	रोटी

2. पश्चिमी हिन्दी और मानक खड़ीबोली हिन्दी की क्रिया-रचना में भी अंतर है जैसे—

वर्तमानकाल में पश्चिमी हिन्दी	मानक हिन्दी
चले है	चलता है
चलूँ हूँ	चलता हूँ
मारूँ था	मरता था
भूतकाल में पश्चिमी हिन्दी	मानक हिन्दी
चल्या	चला
लिख्या	लिखा
उठ्या	उठा

3. कारक-रचना की दृष्टि से भी दोनों में अंतर है जैसे—

कारक	पश्चिमी हिन्दी	मानक हिन्दी
कर्त्ता	नैं, णैं	नै
कर्म	क, नै	को
करण	सै, मू	से
सम्प्रदान	कू, णे, ने	के लिए
अपादान	सै, सु	से
अधिकतर	पै, उप्पर	में, पर

4. सर्वनामों के प्रयोग में भी अंतर है, जैसे मुझ-मुज, हमारा-म्हारा।

5. क्रियाविशेषणों में भी उच्चारणगत अन्तर है, जैसे अत-इब, अभी-इभी, वहाँ-ह्योँ, जहाँ-जोँ, क्यों-क्यूँ।

6. मानक हिन्दी के 'इन' स्त्रीलिंग-प्रत्यय के स्थान पर पश्चिमी हिन्दी में 'अन' 'अण' प्रत्यय लगते हैं, जैसे चमारिन-चमारण, धोबिन-धौबण।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि राष्ट्रभाषा के रूप में प्रचलित मानक हिन्दी का स्वरूप स्वतंत्र हो गया है और मेरठी हिन्दी से वह वहीं अधिक परिष्कृत भी जो गया है। अतएव, आचार्य वाजपेयी का यह कथन सही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का लेखक मेरठ की खड़ीबोली का एकमात्र अनुसरण नहीं कर सकता। मानक हिन्दी ने देशी-विदेशी अनेक शब्दों को ग्रहण कर और अपने परिवार की अनेक बोलियों और अन्य भाषाओं के प्रभावकारी तत्वों और शक्तियों को मिलाकर एक ऐसी परिष्कृत खड़ीबोली का शानदार रूप गठित किया है, जो आज राष्ट्रभाषा का गौरव बन गयी है। आधुनिक हिन्दी व्याकरण उसी परिष्कृत खड़ीबोली हिन्दी का प्रतीक है। इसने पश्चिमी हिन्दी की मर्दानगी और पूर्वी हिन्दी की मधुरता का सुन्दर समन्वय किया है।

2.5.2 आधुनिक मानक भाषा हिन्दी का स्वरूप

आधुनिक मानक हिन्दी का संरचन काफी संकर है। ऐतिहासिक विकास क्रम में हिन्दी को जो रूप प्राप्त हुआ, उसमें मुख्यतः तीन स्तर हैं :-

- (1) प्राकृत- अपभ्रंश से होकर विकसित आधार भूत देशी रूप।
- (2) अरबी-फारसी से प्राप्त रूप।
- (3) आपेक्षिकतया आधुनिक काल में संस्कृत से स्वीकृत रूप।

किन्तु इन तीनों स्तरों के रूपों का ऐसा मिश्रण या संयोजन नहीं हुआ है कि मानक भाषा का एकात्मक समन्वित व्याकरण बन सके। यही वजह है सामान्य मानक हिन्दी और उच्च साहित्यिक हिन्दी के संरचनाओं तथा शब्द भण्डारों में काफी भिन्नता है।

वर्तमान में सामान्यतः पढ़ा-लिखा हिन्दी भाषी तीन स्तरों की भाषा या भाषा रूपों का प्रयोग करता है।

- (अ) वह बोली जिसे वह मातृ भाषा के रूप में सीखता है।
- (ब) सामान्य लिखा पढ़ी व भाषण आदि के लिए प्रयुक्त सामान्य या प्रथम मानक रूप
- (स) उच्च साहित्यिक, दार्शनिक और शास्त्री विषयों पर गम्भीर चर्चा और लेखन के लिए प्रयुक्त उच्च मानक रूप। इनमें दूसरे और तीसरे को आधुनिक मानक हिन्दी के अंतर्गत माना जाता है।

निम्नलिखित शब्दों को मानक भाषा में लिखो।

- (1) गड़ित (2) पेड़ (3) गाड़ी (4) करुना (5) विषेश (6) नर्क (7) ग्रहकार्य (8) पृथा
- (9) अँधा (10) एनक (11) दुसरो (12) कोशल (13) प्रातकाल (14) गर्म (15) अर्थात

जैसे—

(1) गड़ित — गणित

(2) पेड — पेड़

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. भाषा और संस्कृति (Language and culture)

सामान्यतः भाषा मनुष्य की सार्थक व्यक्त वाणी को कहते हैं। 'भाषा' शब्द संस्कृत के 'भाष्' धातु से बना है। इसका अर्थ वाणी को व्यक्त करना है। इसके द्वारा मनुष्य के भावों, विचारों और भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। भाषा की परिभाषा देना एक कठिन कार्य है। फिर भी, भाषावैज्ञानिकों ने इसकी अनेक परिभाषाएं दी हैं।

(क) 'मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि-संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।'—डॉ० श्यामसुन्दरदास

(ख) 'जिन ध्वनि-चिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उसको समाष्टि रूप से भाषा कहते हैं।'—डॉ० बाबूराम सक्सेना।

(ग) 'भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किये गये वर्णानात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।'—डॉ० मंगलदेव शास्त्री

(घ) सुप्रसिद्ध विद्वान कामताप्रसाद गुरु के अनुसार –“भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं –

1. भाषा में ध्वनि-संकेतों का परम्परागत और रूढ़ प्रयोग होता है।
2. भाषा के सार्थक ध्वनि-संकेतों से मन की बातों या विचारों का विनिमय होता है।
3. भाषा के ध्वनि-संकेत किसी समाज या वर्ग के आन्तरिक और बाह्य कार्यों के संचालन या विचार-विनिमय में सहायक होते हैं।
4. हर वर्ग या समाज के ध्वनि-संकेतो अपने होते हैं, दूसरों से भिन्न होते हैं।
5. भाषा के ध्वनि-संकेत उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से वर्णों या शब्दों से व्यक्त होते हैं।

3.1 भाषा का स्वरूप

भाषा सागर की तरह सदा चलती-बहती है। भाषा के अपने गुण या स्वभाव को भाषा की प्रकृति कहते हैं। हर भाषा की अपनी प्रकृति, आन्तरिक गुण-अवगुण होते हैं। भाषा एक सामाजिक शक्ति है, जो मनुष्य को प्राप्त होती है। मनुष्य उसे अपने पूर्वजों से सीखता है और उसका विकास करता है। यह परम्परागत और अर्जित दोनों है। जीवन्त भाषा 'बहता नीर' की तरह सदा प्रवाहित होती रहती है। भाषा के दो रूप हैं – कथित और लिखित। हम इसका प्रयोग कथन के रूप, अर्थात् बोलकर और लेखन के द्वारा (लिखकर) करते हैं। देश और काल के अनुसार भाषा अनेक रूपों में बँटी है। यही कारण है कि संसार में अनेक भाषाएं प्रचलित हैं।

भाषा वाक्यों से बनती है, वाक्य शब्दों से और शब्द मूल ध्वनियों से बनते हैं। इस तरह वाक्य, शब्द और मूल ध्वनियाँ ही भाषा के अंग हैं। व्याकरण में इन्हीं के अंग-प्रत्यंगों का अध्ययन-विवेचन होता है।

3.2 भाषा के विविध प्रकार

हर देश में भाषा के तीन रूप मिलते हैं – (1) बोलियाँ (2) परिनिष्ठित भाषा (3) राष्ट्रभाषा। जिन स्थानीय बोलियों का प्रयोग साधारण जनता अपने समूह या घरों में करती है, उसे बोली (dialect) कहते हैं। किसी भी देश में बोलियों की संख्या अनेक होती है। भारत में लगभग 600 से अधिक बोलियाँ बोली जाती हैं। ये घास-पात की

तरह अपने-आप जन्म लेती हैं और किसी क्षेत्र-विशेष में बोली जाती है। जैसे-भोजपुरी, मगही, ब्रजभाषा, अवधी आदि।

परिनिष्ठता भाषा व्याकरण से नियन्त्रित होती है। इसका प्रयोग शिक्षा, शासन और साहित्य में होता है। किसी बोली को जब व्याकरण से परिष्कृत किया जाता है, तब वह परिनिष्ठत भाषा बन जाती है। खड़ीबोली कभी बोली थी, आज परिनिष्ठित भाषा बन गयी है, जिसका उपयोग भारत में सभी स्थानों पर होता है। जब भाषा व्यापक शक्ति ग्रहण कर लेती है तब आगे चलकर राजनीतिक और सामाजिक शक्ति के आधार पर राजभाषा या राष्ट्रभाषा का स्थान पा लेती है। तब आगे चलकर राजनीतिक और सामाजिक शक्ति के आधार पर राजभाषा या राष्ट्रभाषा का स्थान पा लेती है। ऐसी भाषा सभी सीमाओं को लॉघकर अधिक व्यापक और विस्तृत क्षेत्र में विचार-विनिमय का साधन बनकर सारे देश की भावात्मक एकता में सहायक होती है। भारत में पन्द्रह विकसित भाषाएँ हैं, पर हमारे देश के राष्ट्रीय नेताओं ने हिन्दी भाषा को 'राष्ट्रभाषा' (राजभाषा) का गौरव प्रदान किया है। इस प्रकार, हर देश की अपनी राष्ट्रभाषा है— रूस की रूसी, फ्रांस की फ्रांसीसी, जर्मनी की जर्मन, जापान की जापानी आदि।

3.3 भाषा की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं —

1. भाषा मानव मण्डल का ध्वनिमय स्वरूप है जिससे भावों, विचारों तथा संवेगों की अभिव्यक्ति की जाती है।
2. भाषा अभिव्यक्ति की दृष्टि से उच्चारण की सीमित ध्वनियों का संगठन है।
3. ध्वनिमय शब्दों, संकेतों तथा चिन्हों द्वारा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति ही भाषा है।
4. भाषा मौखिक तथा लिखित प्रतीकों, शब्दों, संकेतों व चिन्हों की व्यवस्था है।
5. भाषा एक माध्यम है जिसके द्वारा मानव-समाज एवं संस्कृति के विचारों एवं कार्यों का सम्प्रेषण किया जाता है।
6. मानव मण्डल को भाषा (वाणी) का वरदान प्रकृति से मिला है जिसके कारण जीवन-मण्डल में सर्वोच्च स्थान पाया है।
7. भाषा के माध्यम से मानव अपने ज्ञान को संचित करता है, प्रसार करता है तथा अभिवृद्धि भी करता है।
8. भाषा से तात्पर्य विचारों, भावों एवं संवेगों की अभिव्यक्ति प्रमुख रूप से श्रोता, ग्राह्य ध्वनि चिन्हों एवं संकेतों से करता है।

9. भाषा के प्रमुख तत्त्व ध्वनियाँ, चिन्ह तथा व्याकरण होते हैं। भाषा के अंतर्गत सार्थक शब्द-समूह को सम्मिलित किया जाता है।
10. भाषा मानव की कलाकृति है जिसके प्रमुख कौशल बोलना, पढ़ना तथा सुनना है।
11. भाषा का मूल तत्व ध्वनि है। प्रत्येक भाषा की कुछ मूल ध्वनियाँ मान्य होती हैं और उनकी एक मान्य व्यवस्था होती है। ध्वनियाँ मिलकर शब्दों की संरचना करती हैं शब्द भाव एवं विचार का प्रतीक होते हैं। शब्दों से वाक्य का निर्माण होता है जिससे अभिव्यक्ति की जाती है। शब्दों से भाषा का निर्माण होता है। इस प्रकार ध्वनि एवं शब्द भाषा के मूल तत्व होते हैं।

संस्कृति (Culture)

भारतीय संस्कृति का विकास और प्रसार आधुनिक भारत की सीमाओं के अंतर्गत ही नहीं हुआ। ईसा पूर्व तीसरी सदी से लेकर ईस्वी सन् एक हजार के सुदीर्घ युग में भारतीय पूर्व और पश्चिम के अनेक देशों को गये। वहाँ उन्होंने अपने धर्म, भाषा संस्कृति आदि का प्रसार किया। अन्य देशों की खोज करने, दिग्विजय करने, धर्म-प्रसार एवं व्यापार करने के लिए भारतीय पर्वत और समुद्र की चहारदीवारी लौंघकर अपने देश के बाहर पूर्व और पश्चिम के देशों को गये। पूर्व में उन्होंने अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किये। लंका, ब्रह्मा, स्याम, कम्बोडिया, मलाया, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो, मध्य एशिया के तुर्किस्तान, खोतान आदि देशों में भारतीयों ने अपने उपनिवेश बसाकर यहाँ अपनी संस्कृति का विस्तार किया। इन देशों से आगे बढ़कर उन्होंने अपनी संस्कृति की आध्यात्मिक शक्तियों से चीन, जापान और कोरिया का रूपान्तरण कर दिया। भारतीयों की संस्कृति के विस्तार का आधारभूत सिद्धांत एकीकरण और प्रकटीकरण था। भारतीय दर्शन, धर्म और संस्कृति विदेशियों को परिपूर्ण और सफल करने के लिए थे।

पूर्व और पश्चिम के देशों में भारतीय संस्कृति का पर्याप्त प्रसार हुआ था। पूर्व से कोरिया, जापान से लेकर पश्चिम में ईरान और अलेक्जेंड्रिया या सिकन्दरिया तक और उत्तर में मध्य एशिया के देशों से लेकर दक्षिण में लंका तक हिन्दू संस्कृति का प्रसार हुआ था। इस क्षेत्र में और विशेषकर मध्य एशिया और दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में भारतीयों ने अपने अनेक उपनिवेश स्थापित किये थे। इस सारे क्षेत्र और उपनिवेशों में हिन्दुओं का विशाल सांस्कृतिक साम्राज्य था। इसी सांस्कृतिक साम्राज्य के क्षेत्र को बृहत्तर भारत कहते हैं।

संस्कृति का अर्थ एवं विशेषताएं

किसी समुदाय या समाज के रहने-सहने के समग्र तरीकों या जीवन विधि को संस्कृति कहते हैं।

विशेषाएं

1. संस्कृति सीखा हुआ व्यवहार।
2. संस्कृति में हस्तान्तरित होने का गुण है।
3. संस्कृति समूह का आदर्श होती है।
4. संस्कृति में सामाजिकता का गुण है।
5. संस्कृति में अनुकूलन का गुण है।
6. संस्कृति में आवश्यकता पूर्ति का गुण है।
7. प्रत्येक समाज की संस्कृति पृथक होती है।

भाषा पर संस्कृति का प्रभाव

कोई भी समाज अपनी संस्कृति के अनुरूप ही भाषा की रूप रेखा का निर्माण करता है। उदाहरणतः यदि किसी समाज की संस्कृति में आध्यात्मिकता प्रमुख है, तो वहाँ की भाषा में शास्वत मूल्यों की प्राप्ति पर बल दिया जाता है और यदि किसी समाज की संस्कृति भौतिकतावादी है तो वहाँ की भाषा में भौतिक उद्देश्यों का प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि समाज में कोई संस्कृति है ही नहीं तो वहाँ की भाषा का स्वरूप भी अनिश्चित या अव्यवस्थित रहता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति और भाषा घनिष्ठ रूप से संबंधित है। संस्कृति का प्रभाव भाषा के सभी अंगों पर पड़ता है।

1. संस्कृति का भाषा के उद्देश्यों पर प्रभाव भाषा के उद्देश्य समाज में प्रचलित आचार-विचार दार्शनिक, धाराओं, धार्मिक तत्वों, विश्वासों, मान्यताओं तथा आवश्यकताओं के आधार पर निर्मित होते हैं। स्पष्ट है कि किसी भी समाज में भाषा के उद्देश्यों पर वहाँ की संस्कृति का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है।
2. संस्कृति का पाठ्यक्रम पर प्रभाव — किसी भी समाज में भाषा के उद्देश्यों के निर्माण का आधार उस समाज की संस्कृति होती है। अब चूँकि पाठ्यक्रम के माध्यम से शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। अतः पाठ्यक्रम भी समाज की संस्कृति पर आधारित होता है। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय समाज में प्रचलित विचारों, विश्वासों, मूल्यों को ध्यान में रखना पड़ता है।
3. संस्कृति का शिक्षण-विधि पर प्रभाव— शिक्षण-प्रक्रिया अथवा शिक्षण-विधि समाज की विचारधाराओं के अनुसार परिवर्तित होती रहती है, जैसे-पहले शिक्षा के

अंतर्गत शिक्षक का स्थान प्रमुख था, वहीं सर्वेसर्वा था और बालक का स्थान गौण था। इस लिये उस समय शिक्षण—विधि में दमनात्मक अनुशासन, अनुकरण एवं रटने की क्रिया पर अत्याधिक बल दिया जाता है, लेकिन आधुनिक समय में शिक्षा बालक की रुचियों पर विशेष ध्यान देती है तथ उसे सामाजिक जीवन के लिये तैयार करती है। इसलिये अब शिक्षण विधि में वैयक्तिक प्रयासों पर बल देने के साथ—साथ सामाजिक क्रियाओं एवं सामूहिक शिक्षण विधि को श्रेष्ठ समझा जाता है जिससे बालक के सामुदायिक जीवन का अधिकतम विकास हो।

4. संस्कृति का अनुशासन पर प्रभाव — अनुशासन पर समाज की संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ता है। समाज में प्रचलित व्यवस्था, मूल्य, रहन—सहन, विचारधारायें, भौतिक सम्पन्नता आदि अनुशासन को प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में समाज में जैसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती हैं, अनुशासन उनसे पूर्णरूप से प्रभावित होता है।

5. संस्कृति का अध्यापक पर प्रभाव— अध्यापक, वस्तु: समाज की संस्कृति का एक जीवन्त प्रतीक होता है। वह शिक्षण की युक्तियों द्वारा अपनी संस्कृति को फैलाता है। बालक उसके विचारों से प्रभावित होकर ही उसी संस्कृति को अपनाते हैं। इसके अतिरिक्त इस विषय में मतभेद पाये जाते हैं कि शिक्षा में शिक्षक का क्या स्थान है, यह मत—विभिन्नता, वास्तव में, विभिन्न संस्कृतियों के कारण ही पाई जाती है।

6. संस्कृति का विद्यालय पर प्रभाव — विद्यालय को समाज का लघु रूप कहा जाता है। इसलिये विद्यालय पर समाज की संस्कृति की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। दूसरे शब्दों में, विद्यालय समाज की संस्कृति के केन्द्र होते हैं। समाज के रीति—रिवाज, रहन—सहन के नवीन ढंग, फैशन, प्रवृत्तियाँ आदि पर फलते—फूलते हैं। समाज की प्रमुख विचारधाराओं के अनुकूल ही विद्यालय के समस्त कार्य संचरित होते हैं।

संस्कृति पर भाषा का प्रभाव — एक ओर जहाँ संस्कृति भाषा के स्वरूप एवं प्रक्रिया को प्रभाव करती है वहीं दूसरी ओर भाषा भी अपने विविध कार्यों के द्वारा संस्कृति का संरक्षण, हस्तांतरण एवं विकास करती है। संस्कृति पर भाषा के प्रभाव की विवेचना इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है।

1. संस्कृति की निरन्तरता को बनाये रखना — किसी भी जाति के जीवित रहने के लिए आवश्यक है कि उसकी संस्कृति जीवित रहे, उसकी परम्परायें, प्रथायें, विश्वास और रीति—रिवाज जीवित रहे। देखा गया है कि जब किसी जाति की संस्कृति नष्ट हो जाती है, जब वह जाति भी समाप्त हो जाती है।

2. संस्कृति के हस्तांतरण में सहायता करना— भाषा के माध्यम से नई पीढ़ी समाज की संस्कृति को आत्मसात करती है। यह ठीक है कि व्यक्ति संस्कृति की अनेक बातें अज्ञात रूप से सीख लेता है किन्तु सत्य यह है कि संस्कृति की मुख्य बातों की शिक्षा शिक्षक द्वारा दी जाती है। इस प्रकार शिक्षक शिक्षा के माध्यम से संस्कृति को नई पीढ़ी को हस्तांतरित करता है।

3. संस्कृति का विकास करना — भाषा द्वारा संस्कृति का विकास भी होता रहता है क्योंकि यदि ऐसा न हो तो व्यक्ति एवं समाज की प्रगति हो समाप्त हो जाये। इसलिये ये भाषा संस्कृति का विकास भी करती है। संस्कृति के विभिन्न तत्व होते हैं जैसे—भाषा, साहित्य, कला, संगीत आदि। व्यक्ति शिक्षा के माध्यम से इन तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर इनका विकास करता है। स्पष्ट है कि भाषा संस्कृति के विकास में पूर्णरूप से सहायक सिद्ध होती है।

4. व्यक्तित्व के विकास में सहायकता करना— भाषा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है लेकिन इस उद्देश्य के विभिन्न की प्राप्ति वह संस्कृति की सहायता से ही करती है। भाषा बालक के व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों जैसे—बौद्धिक, चारित्रिक आदि के विकास के लिए सांस्कृतिक उपकरणों को प्रयोग में लाती है। व्यक्तित्व के विकास के ये शिक्षा नित-नीवन उपकरणों की रचना करती है।

5. संस्कृति का परिष्कार — समय के साथ-साथ संस्कृति के तत्व पुराने होते रहते हैं। अतः शिक्षा द्वारा उन अन्ध-विश्वासों, कुरीतियों, बुरे विचारों और बुरी प्रवृत्तियों को दूर किया जाता है। इससे संस्कृति परिष्कृत होती है और उसमें समय तथा परिस्थिति के साथ परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन लाने का कार्य विद्यालय बहुत सरलता से कर सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है। भाषा के विभिन्न साधनों द्वारा व्यक्ति समाज की संस्कृति तथा संस्कृति के निर्णायक तत्वों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त संस्कृति का संरक्षण तथा विकास करने की दृष्टि से भी शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

4. भाषा का बोलना एवं लिखना (Spoken and written forms of Language)

वाचन और लेखन भाषा के दो रूप हैं। भाव व विचार अभिव्यक्ति का माध्यम वाचन तथा लेखन हैं। वाचन की क्रिया स्वाभाविक है तथा बोलना प्रकृति प्रदत्त

शक्ति है बालक सुनकर, अनुकरण तथा अभ्यास द्वारा मातृभाषा बोलना सीख लेता है और बालक अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने लगता है। प्रशिक्षण तथा शिक्षा द्वारा बोलने में कुशलता एवं प्रवाह का विकास किया जाता है। बोलने में ध्वनियों को प्रधानता दी जाती है। जब भावों तथा विचारों को लिपिबद्ध करके भाषा को स्थायित्व प्रदान करते हैं तब इसे भाषा का लिखित रूप कहते हैं। ध्वनि को लिपिबद्ध करना 'लेखन' कहा जाता है। शब्दों की वर्तनी के साथ अक्षरों को सुन्दर एवं स्वच्छ लिखना भी निहित है।

श्रीधर मुकर्जी के अनुसार, "संसार में मनुष्य दो प्रकार से ख्याति प्राप्त करता है, एक 'वक्ता' दूसरा 'लेखक'। वक्ता तो प्रायः अपने जीवन काल में ही विशेष पूज्य रहता है अर्थात् उसकी ख्याति जीवन काल में होती है। उसके बाद लोग उसे धीरे-धीरे भूलने लगते हैं, परन्तु लेखक का नाम अमर रहता है, उसके पश्चात् भी लोग उसकी रचनाओं का अध्ययन करते हैं और उसके भाव एवं विचारों के लाभ उठाते हैं।"

4.1 बोलना—(Spoken)

बोलना एक कला है। बोलने का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकता होती है। व्यक्ति का सबसे बड़ा आभूषण उसकी सुसंस्कृत एवं मधुर वाणी है, क्योंकि अन्य सभी आभूषण तो टूट या घिस जाते हैं किन्तु वाणी सदा बनी रहती है, व्यक्ति का एकमात्र आभूषण उसकी मधुर वाणी है। अमृत भी मधुर वाणी में ही होता है। मनुष्य अपने भावों एवं विचारों को बोलकर अथवा लिखकर व्यक्त करता है। भावों एवं विचारों का सम्प्रेषण या प्रकाशन की रचना है। अतः रचना के दो मुख्य रूप हैं—मौखिक रचना एवं लिखित रचना।

कैथरीन ओकानर के अनुसार —"वाचन वह जटिल सीखने की प्रक्रिया है जिसमें सुनने के गतिवाही माध्यमों का मानसिक पक्षों से सम्बन्ध होता है।"

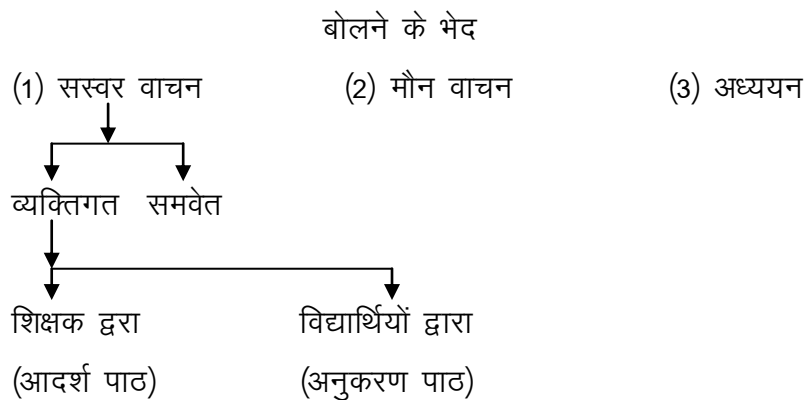
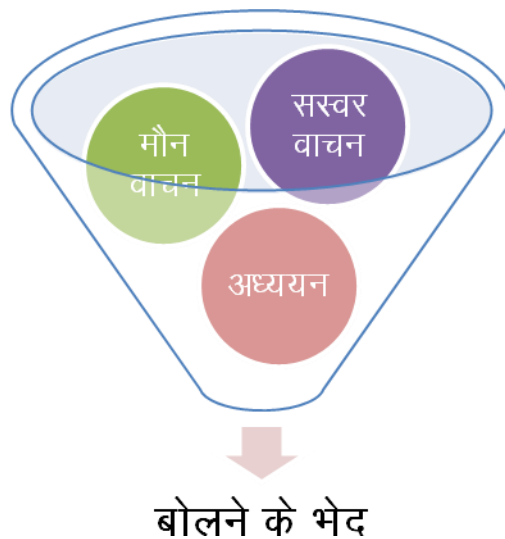
4.2 बोलने के उद्देश्य —

1. बालकों को स्वर के उतार-चढ़ाव का ऐसा अभ्यास करना कि वे गद्य, पद्य, नाटक आदि को बोलना भावों के अनुकूल स्वरों में लोच देकर बोल सकें।
2. बोलना प्रभावशाली हो ताकि श्रोता समुदाय उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके और जिस उद्देश्य से वाचन किया गया हो उसकी पूर्ति हो।
3. पढ़ते-पढ़ते विद्यार्थी भाव अर्थ-ग्रहण कर सके इसलिये बालकों की

शब्दोच्चार, उचित ध्वनि निर्गम, बल, विराम, उचित वाचन मुद्रा, उचित वाचन शैली, गति, एवं प्रभावोत्पादकता का उचित संस्कार करना।

4. ज्ञानोपार्जन के साथ-साथ बोलने के प्रति रुचि उत्पन्न करके विद्यार्थी को साहित्य-प्रवेश करवाना ताकि वाचन का सदुपयोग रचनात्मक कार्यों में कर सके।
5. सामाजिक संवेदनशीलता का विकास करके विद्यार्थियों को विशाल दृष्टिकोण प्रदान करना।

4.3 बोलने के भेद—



वाचन के भेद— वाचन के मुख्यतः तीन भेद हैं—

- (1) सस्वर वाचन

(2) मौन वाचन

(3) अध्ययन

“ सस्वर वाचन— स्वर वाचन को सस्वर वाचन कहते हैं इसमें विद्यार्थी पढ़ने के साथ बोलता भी जाता है,” सस्वर वाचन चार प्रक्रियाओं पर आधारित है —

(अ) लिपिबद्ध अक्षरों को देखना।

(ब) पहचानना।

(स) शब्दों का समझना।

(द) उच्चारण करना।

मौन वाचन— ‘स्वर रहित वाचन को मौन वाचन कहते हैं इसमें विद्यार्थी शान्त रहकर, बिना होंठ हिलाये, चुपचाप, एकाग्रचित होकर पठनीय अंश को पढ़ता है।’

अध्ययन—“मौन पाठ का उच्चतर है, वाचन की पराकाष्ठा है, परम गति है, अर्थ ग्रहण, विश्लेषण, संश्लेषण, आलोचना और निष्कर्ष अध्ययन के प्रमुख सोपान है।”

4.4 बोलने की विधियाँ

1. अक्षर-बोध विधि — यह सबसे प्राचीन शिक्षण विधि है। इसमें सर्वप्रथम स्वर तथा व्यंजन शब्दों को पढ़ाया जाता है। इस विधि में अक्षर की ध्वनियों को प्रधानता दी जाती है। स्वर शिक्षा में बालक को शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराया जाता है। इसके बाद बालक स्वर एवं व्यंजन का मिलान सीखता है। यही मिलान वाक्यों की रचना में सहायता करता है। अक्षर बोध विधि से बालकों का उच्चारण शुद्ध होता है, अक्षर, शब्द तथा वाक्य का क्रमबद्ध ज्ञान होता है।

2. देखों और कहो विधि— इस विधि में अक्षरों के बोध के स्थान पर शब्द-बोध कराया जाता है। चित्र देखकर बालक को स्वयं ही उस शब्द का ध्यान आ जाता है। चित्र ऊपर अथवा नीचे बना रहता है। उसे देखों और कहो। बालक देखकर समझने का प्रयास करता है— फिर बोलता है। चित्र बालक के परिचय की परिधि में हो इसीलिए बालकों के स्तर की वस्तुओं के चित्र तैयार किए जाते हैं। उन्हीं का प्रयोग किया जाता है। चित्रों को श्यामपट पर भी बनाया जा सकता है।

3. अनुकरण विधि— बालक अनुकरण विधि से ही अधिक सीखते हैं। परन्तु हिन्दी में अंग्रेजी की अपेक्षा कम उपयोग है। हिन्दी में प्रत्येक अक्षरकी ध्वनि निश्चित है, जबकि अंग्रेजी अक्षर की ध्वनि निश्चित नहीं है। एक ही अक्षर डी का प्रयोग ‘द’ तथा ‘ड’ दोनों ध्वनियों के लिए होता है। अनुकरण विधि के लिए शिक्षक के वाचन में भावपूर्ण और शुद्ध उच्चारण आना आवश्यक होता है।

4. ध्वनि साम्य विधि— इस विधि के अन्तर्गत ध्वनि की समानता रखने वाले शब्दों को साथ-साथ सिखाया जाता है। एक— सी ध्वनि के कारण छात्र एक साथ सरलता से सीख लेते हैं। जैसे, धर्म, कर्म, गर्म में समान ध्वनि होती है, इसी प्रकार क्रम, श्रम, भ्रम शब्दों में समान ध्वनि हैं। इस विधि में कभी कभी अनावश्यक शब्द भी सीखने पड़ जाते हैं जिन्हें हम प्रयोग में नहीं लाते हैं तथा कुछ अशुद्ध भी होते हैं।
5. भाषा शिक्षण की तकनीकी विधि — आज शिक्षण के क्षेत्र में 'शिक्षा-तकनीकी' का विकास हुआ। इसके परिणामस्वरूप शिक्षण में मशीनों तथा यंत्रों का प्रयोग किया जाने लगा है। दूरदर्शन तथा रेडियों छात्रों को विशिष्ट व्यक्तियों के भाषण सुनने में सहायक होते हैं — इनमें क्रमबद्धता, भाव-विभोरता, भाषा का चयन तथा वाचन शैली का अनुकरण करते हैं।
6. कहानी विधि— कहानी विधि में बालक अधिक रुचि लेते हैं। कहानी को चार-पाँच वाक्यों में पूर्ण करके सुनानी चाहिए। चित्रों की सहायता से कहानी विधि अधिक प्रभावशील होती होती है। चित्रों को देखकर, वाक्यों को पढ़कर कहानी का पूर्ण-ज्ञान रोचकता से हो जाता है। भाषा प्रवाह कहानी से ही विकसित होता है।
7. वाक्य शिक्षण विधि— अक्षर बोध विधि में अक्षर की ध्वनि से, 'देखों और कहो' विधि में शब्दों से शिक्षण आरम्भ करते हैं। वाक्य विधि में शब्दों से प्रारम्भ न करके वाक्यों से शिक्षण आरम्भ किया जाता है।

4.5 बोलने संबंधी दोष व सावधानियाँ —

1. आवृत्ति—पुरावृत्ति से भी उच्चारण की अशुद्धियाँ ठीक नहीं होती।
2. बोलने की अस्पष्टता के लिए रोक कर धीरे-धीरे अक्षर-अक्षर स्पष्ट बोलने का अभ्यास कराया जाए।
3. बालकों में स्थानीय प्रभाव से वाचन अशुद्ध हो जाता है। इसके लिए यदि सम्भव हो तो ऐसा वातावरण से बालक को हटाकर शुद्ध बोलने वालों के मध्य रखा जाए।
4. निदान एवं सुधार से भी बोलने की अशुद्धियों का निर्वाह किया जाता है। उच्चारण के दोष का निदान तथा उपचार बाल्यावस्था से ही करना चाहिए।
5. बोलने के दो प्रकार होते हैं — सस्वर बोलना तथा मौन बोलना। सुधार एवं उपचार की क्रिया सस्वर बोलने के लिए प्रयुक्त की जा सकती है।

बोलने संबंधी — शिक्षण में सावधानियाँ

बोलने संबंधी शिक्षण के समय शिक्षक को अधोलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए —

1. जब बालक बोल रहा हो उस समय टोकना नहीं चाहिए। वाचन में अशुद्धियाँ, उच्चारण में अशुद्धियाँ होने पर वार्ता अथवा वाचन में रोकना नहीं चाहिए। बाद में वाचन की अशुद्धियों का सुधार करने का प्रयास स्वाभाविक ढंग से करना चाहिए।
2. वाचन आत्म प्रकाशन तथा अभिव्यक्ति की कला है। शिक्षित तथा अशिक्षित अपनी अभिव्यक्ति हेतु वाचन करते हैं।
3. आरम्भ से वाचन में शुद्ध उच्चारण पर ध्यान दिया जाये और अभ्यास कराया जाये।
4. छात्रों में अभिव्यक्ति के लिए प्रोत्साहित किया जाए। उन्हें उनकी रुचि तथा अनुभव के अनुरूप विषय पर वाचन के लिए अवसर दिया जाए।
5. आरम्भ से वाचन की भाषा की शुद्धता, शुद्ध व्याकरण पर आधारित वाचन को ही प्रोत्साहित किया जाए।
6. छात्रों को उपयोगी पुस्तकों, कहानियों तथा पत्र-पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए उपलब्ध कराया जाये।
7. वाचन की कुशलता अभ्यास पर निर्भर होती है।
8. प्रशिक्षण में पर्याप्त अभ्यास का विशेष महत्व है।
9. शुद्ध उच्चारण का आदर्श प्रस्तुत किया जाए और अनुकरण का अवसर दिया जाए।
10. वाचन से पूर्व तैयारी आवश्यक होती है।

लिखना/लेखन – रचना भावों एवं विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति है वह शब्दों को क्रम से लिपिबद्ध सुव्यवस्थित करने की कला है। भावों एवं विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति जब लिखित रूप में होती है, तब उसे लेखन/लिखना कहते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि “भाषा की ध्वनियों को लिपिबद्ध करना लिखना है, क्योंकि लिपिबद्ध करने से भाषा को स्थायित्व प्राप्त होता है।

4.6 लिखना/लेखन के उद्देश्य –

1. विद्यार्थियों को लेखन कला का पूर्ण परिचय देना ताकि वे अपने भावों, विचारों एवं अनुभवों को मूर्त रूप दे सकें, दूसरे के भावोंको लिपिबद्ध कर सकें।
2. विद्यार्थियों को सुन्दर सुडौल तथा स्पष्ट लेख की शिक्षा देना।
3. विद्यार्थियों के शब्द कोश को सक्रिय रूप देना।
4. मातृभाषा या हिन्दी अक्षरों का वास्तविक स्वरूप चित्रित कर सकने की क्षमता का विकास करना।
5. विद्यार्थियों को लिखने का इतना अभ्यास कराना कि वे यंत्रवत गति के साथ

धारा प्रवाह रूप से लिख सकें।

6. विभिन्न विराम चिन्हों का उचित प्रयोग सिखाना।
7. विद्यार्थियों को अपने विचार तथा अनुभवों को अनुच्छेदों में बाँटकर लिखने का अभ्यास कराना।

4.7 लिखना सिखाने के नियम –

लिखना सिखाते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है :—

1. लेखन—चक्र अधिक लम्बा न हो, अन्यथा बालक थक जाएँगे और उनका लेख अच्छा नहीं बनेगा।
2. लिखना सिखाने का भी एक क्रम है। यह क्रम वर्णमाला के क्रम से कुछ भिन्न है।
3. लिखना सिखाते समय पहले वही अक्षर चुना जाए, जिसे बालक थोड़े से प्रयास से ही लिख सके। फिर उस वर्ण में थोड़ा—सा परिवर्तन करके, एक और वर्ण बनाया जाए। इसी प्रकार चार—पाँच वर्ण बनवाए जाए। सारी वर्णमाला को इसी प्रकार कुछ वर्णों में विभाजित करके अक्षर बनाना सिखाया जाए।
4. प्रारंभ में लिखने की गति पर इतना ध्यान नहीं देना चाहिए, जितना इस बात पर कि बालक जो—जो लिखे, ठीक—ठीक तथा सुन्दर लिखें।
5. एकदम ही बालकों से छोटे—छोटे अक्षर लिखने के लिए न कहा जाए। पहले—पहल उन्हें बड़े—बड़े अक्षर लिखने को दिए जाएँ।
6. वहीं बालक अच्छा लिख सकेगा, जिसमें ठीक पढ़ने की क्षमता होगी। इसलिए बालकों की पढ़ी हुई वस्तु से ही, उनके लेखन का समन्वय करना चाहिए।
7. अच्छा यह होगा कि बालक का नाम ही पहले लिखवाया जाए। इससे बालकों को बड़ी प्रसन्नता होगी।
8. बालक लिखते, समय जिन उपकरणों का प्रयोग करते हैं, उनमें भी कोई क्रम होना चाहिए। पहले बालक हाथों की अंगुलियों द्वारा धरती पर लिखे, फिर श्यामपट पर चाक से लिखें। बाद में काठ की पट्टियों और स्लेट आदि का प्रयोग किया जाए और सबसे अन्त में बालक कलम और दवात का प्रयोग करे कागज पर लिख सकते हैं।
9. लिखना सिखाते समय बालकों के व्यक्तिगत भेदों पर पूरी—पूरी दृष्टि रखी जानी चाहिए।

4.8 लिखना सिखाने की विधियाँ – अक्षरों और वर्णों को लिखना सिखाने के लिए इन विधियों का अनुमोदन किया जाता है –

- (1) अनुकरण विधि—

इस विधि के दो प्रकार हैं –

(अ) रूप-रेखा अनुकरण— कुछ मुद्रित पुस्तिकाएं ऐसी होती हैं, जिनमें अक्षर या वाक्य बिन्दु रूप में लिखे होते हैं। छात्र उन बिन्दुओं पर पेन्सिल या बालपेन फेरता है और अभ्यास करते अक्षरों या शब्दों को लिखना सीख जाता है।

(ब) स्वतन्त्र अनुकरण – अध्यापक श्यामपट पर, स्लेट पर या अभ्यास-पुस्तिका पर अक्षर लिख देता है और बालक से कहता है कि वह नीचे स्वयं, उसी प्रकार के अक्षर लिखें।

(2) मान्तेसरी विधि –

इस विधि में आँख, कान आदि ज्ञानेन्द्रियों और हाथ-तीनों से सहायता ली जाती है। बालक पहले अक्षरों को देखता है, उनकी ध्वनियों को कानों से सुनता है और रेगमाल आदि के अक्षरों पर अंगुली फेरता है। इस प्रकार वह अक्षरों के स्वरूप से परिचित होकर उनको लिखना सीख जाता है।

(3) पैस्टालॉजी विधि

इस विधि में वर्णों की आकृति को खण्ड-खण्ड करके, उनका अभ्यास कराया जाता है यथा –

क- 0 0 0 0 0 0 व व व व व व क क क क क

अध्यापक तख्ती पर, स्लेट पर, श्यामपट पर या बालक की अभ्यास-पुस्तिका पर ऐसे खण्ड बना देता है और बालक उन्हें देख-देख कर लिखता है। कई सुलेख की पुस्तिकाओं में ऐसे खण्ड बने होते हैं।

(4) जैकटाट विधि

इस विधि का अनुमोदन सबसे पहले जैकटाट, नाम के शिक्षाशास्त्री ने किया था। इसमें बालक स्वयं संशोधन करता है। बालकों ने जो पाठ पढ़ा होता है, उसका कोई वाक्य अध्यापक लिखकर देता है। बालक अनुकरण करके एक-एक शब्द को लिखता है और मूल से मिलाकर देखता जाता है। यदि कोई अशुद्धि हो, तो उसे ठीक कर लेता है। इस प्रकार शब्दों का मिलान करता हुआ, वह पूरा वाक्य लिखने का अभ्यास करता है।

4.9 लिखने संबंधी दोष एवं सुझाव –

शिक्षक को लेखन के दोषों का बोध होना आवश्यक है तभी वह इन दोषों का सुधार कर सकता है। प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं :-

1. बालक लिखने में पंक्ति का ध्यान नहीं रखता है और समानआकार के नहीं होते हैं। किसी एक ओर झुके रहते हैं, सीधे नहीं लिख पाता है।

2. सभी अक्षरों की ऊँचाई समान नहीं होती है।
3. अक्षरों का शुद्ध ज्ञान न होने पर कुछ भी लिख देता है।
4. अक्षरों को पूर्ण रूप में न लिखना शिरारेखा का स्थान-स्थान पर टूटा होना।
एक शब्द के ऊपर एक ही रेखा न होना।
5. लेखन में एक ही लेखनी का प्रयोग न करने से कुछ पतले और कुछ मोटे अक्षर होते हैं।
6. शब्द को पूरा न लिखना, शब्द के अक्षर बिखरे होना।
7. प्रत्येक शब्द तथा अक्षर की स्याही-समान न होने। अक्षरों की स्याही का फीका होना।

लेखन हेतु सुझाव

लेखन शिक्षण के लिए यहाँ कुछ सुझाव दिए गए हैं।

1. छात्रों के बैठने का आसन समुचित होना चाहिए। झुककर लिखने की आदत न पड़े।
2. हिन्दी वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियों के सुधार हेतु अभ्यास कराया जाए।
3. लिखने तथा पढ़ने की क्रियाएं एक साथ होनी चाहिए।
4. अक्षरों तथा शब्दों के सुन्दर लिखने के लिए आदर्श प्रस्तुत किया जाये जिसका छात्र अनुकरण कर सकें।
5. लेखन एक कला है जिसका विकास अभ्यास तथा अनुकरण से किया जा सकता है।
6. लेखन क्रिया छात्रों की रुचि के शब्दों से आरम्भ की जानी चाहिए।
7. शब्दों और अक्षरों की धीरे-धीरे सुझौल तथा सुन्दर लिखने से आरम्भ करके लिखने की गति का भी विकास किया जाए।
8. शब्दों एवं अक्षरों की एकरूपता गति से लिखने में मुख्य विशेषताओं का ध्यान रखा जाये।

5. प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा (First Language and Second Language)

5.1 भाषा के दो रूप हैं।

(1) स्व भाषा या मातृभाषा (2) इतर भाषा या अन्य भाषा

प्रथम भाषा/मातृ भाषा दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

जो बालक मानसिक और दैहिक रूप से स्वस्थ है, वह जन्म के छः मास बाद ही अपनी स्वभाषा या मातृभाषा को धीरे-धीरे ग्रहण करने लगता। इस प्रकार बिना पाठशाला गए और बिना किसी औपचारिक शिक्षा के सजह रूप से अपने परिवार में पालित-पोषित होते हुए, जिस भाषा को वह सबसे पहले सीखता है, वह उसकी स्व-भाषा, मातृभाषा या प्रथम भाषा होती है। प्रत्येक स्वस्थ बालक (या व्यक्ति) की कोई न कोई प्रथम भाषा अवश्य होती है। इसे ही 'मातृभाषा' भाषा भी कहते हैं।

आमतौर पर मातृभाषा क्षेत्रीय बोली हुआ करती है। उदाहरणस्वरूप आगरा, मथुरा, अलीगढ़, भरतपुर आदि में बालक (व्यक्ति)की मातृभाषा, उस क्षेत्र की ब्रज बोली है। ब्रज बोली का ही प्रयोग वहां की दैनिक बोलचाल में होता है। परन्तु इन लोगों की प्रथम भाषा खड़ी बोली हिन्दी है। इस प्रथम भाषा हिन्दी का प्रयोग सभ्य समाज के लोगों के मध्य होता है।

“सभ्य समाज के लोगों में, जिस भाषा में, विचार-विनिमय, तथा पत्र व्यवहार होता है, उसे प्रथम भाषा कहा जाता है। प्रथम भाषा ही प्रायः शिक्षा का माध्यम होती है।” जिन भाषाओं या बोलियों का भौगोलिक क्षेत्र छोटा होता है, वहाँ मातृभाषा और प्रथम भाषा स्वरूप प्रायः एक ही होता है। परन्तु जिनका क्षेत्र अपेक्षाकृत बड़ा होता है (जैसे ब्रज या अवधि बोली का) वहा मातृभाषा और प्रथम भाषा में थोड़ा बहुत अंतर दिखाई देता है।

प्रथम भाषा और मातृभाषा में अंतर— प्रतिदिन के जीवन में ‘अनौपचारिक’ रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा या बोली, जिसे व्यक्ति ने अपने परिवार के लोगों से सहज रूप से ग्रहण किया है — वह ‘मातृभाषा’ है। परन्तु प्रतिदिन के जीवन में, ‘औपचारिक’ रूप से प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा या बोली, जिसे व्यक्ति ने शिक्षित समुदाय से विशेष प्रयास करके ग्रहण किया है — वह “प्रथम भाषा” है।

5.2 प्रथम भाषा के उद्देश्य —

1. व्यक्तित्व का विकास।
2. विचार-विनिमय की कुशलता का विकास।
3. नागरिकता का विकास।
4. जीविकापार्जन की क्षमता का विकास।
5. सांस्कृतिक चेतना का विकास।
6. सौन्दर्यबोध तथा रसानुभूति का विकास।
7. सृजनात्मक प्रतिभा का विकास।

8. मानसिक विकास ।
9. नैतिक विकास ।
10. सामाजिक विकास ।

द्वितीय भाषा —

जीवन—निर्वाह अथवा ज्ञानार्जन की दृष्टि से अधिकांश व्यक्तियों को अपनी मातृभाषा या प्रथम भाषा के अतिरिक्त एक अथवा एक से अधिक अन्य भाषाएं सीखनी पड़ सकती हैं। मातृभाषा या प्रथम भाषा के अतिरिक्त इनके या अन्य भाषाओं को द्वितीय भाषा कहा जाता है।

द्वितीय भाषा को सीखने के ये तरीके हो सकते हैं —

- (i) द्वितीय भाषा के मातृभाषा—भाषियों के सम्पर्क में आकर
- (ii) पुस्तकों से।
- (iii) शिक्षा आदि के माध्यम से।

इसे सीखने के लिए विशेष प्रयास करना होता है और विशेष रूप से सावधान रहना होता है। द्वितीय भाषा के अंतर्गत देशी तथा विदेशी भाषाओं की गणना की जाती है। प्रथम भाषा या द्वितीय भाषा यदि सगोत्री या समस्त्रोतीय भाषाएं होती हैं, तो द्वितीय भाषा को सीखने में कम प्रयास करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप एक पंजाब, भाषी, गुजराती भाषा या मराठी, भाषी को हिन्दी सीखने में तमिल या तेलुगू भाषी की अपेक्षा कम प्रयास करना पड़ता है।

शिक्षा शास्त्र तथा भाषा विज्ञान की दृष्टि से मातृभाषा का प्रथम भाषा के अतिरिक्त ग्रहण की जाने वाली सभी देशी या विदेशी भाषाएं, द्वितीय भाषा की श्रेणी में आएंगी

5.3 द्वितीय भाषा के उद्देश्य —

1. भाषा के प्रयोग में कुशलता प्राप्त करना ताकि अन्य भाषा—भाषी लोगों के साथ कुशलतापूर्वक समायोजन कर सके।
2. अन्य भाषा—भाषी लोगों के साथ विचारों का आदान—प्रदान करने की क्षमता अर्जित करना।
3. मातृभाषा से इतर अन्य भाषाओं में भी अतुल ज्ञान का भण्डार है — उसे अर्जित कर अपने ज्ञान—भण्डार का विस्तार करना।
4. अन्य भाषा—भाषी समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं से परिचित होना।

5. अन्य भाषाओं के साहित्य का रसास्वादन कर, आनन्दानुभूति प्राप्त करना।
6. इतर भाषा-भाषी समाज के आदर्शों, जीवन-मूल्यों, चिन्तनधारा आदि से परिचित हो अपने व्यक्तित्व का परिमार्जन करना।
7. अन्य भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके, अपनी व्यावसायिक कुशलता क्षेत्र का विस्तार करना।
8. अपनी मातृभाषा और उसका साहित्य तथा द्वितीय भाषा और इसका साहित्य इनका तुलनात्मक अध्ययन करके अपने ज्ञान का विकास करना।
9. अपने प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों के या केन्द्रीय राजनैतिक नेतृत्व की दृष्टि से संसद की कार्यवाही में, सम्यक रूप से भाग लेने के लिए द्वितीय भाषा का ज्ञान बड़ा उपयोगी है।
10. देश के प्रशासन के विभिन्न विभागों में समायोजन बनाए रखने के लिए द्वितीय भाषा का ज्ञान बड़ा सहायक सिद्ध हो सकता है।
11. द्वितीय भाषा का ज्ञान, उदार दृष्टिकोण विकसित करने में बड़ा सहायक होता है।

5.4 प्रथम और द्वितीय भाषा के शिक्षण की प्रक्रिया एवं तकनीकी –

भाषा सीखने का स्वाभाविक क्रम है— सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना। पाँच वर्ष का बालक विद्यालय में आता है। तब उसका उच्चारण कुछ दोषपूर्ण हो सकता है। यह दोष कुछ ध्वनियों का संयुक्त ध्वनियों से सम्बंधित हो सकता है। प्राथमिक कक्षाओं में ही उच्चारण सम्बन्धी दोषों को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। वाचन शिक्षण को प्राथमिकता देते हुए लेखन की ओर अग्रसर होना चाहिए।

द्वितीय भाषा-शिक्षण के समय भी सुनना-बोलना, पढ़ना-लिखना यही क्रम अपनाना चाहिए। आमतौर पर द्वितीय भाषा को शिक्षा देते समय श्रवण और उच्चारण पक्ष की उपेक्षा कर दी जाती है। केवल वाचन और लेखन पर ही अधिक बल दिया जाता है। इसीलिए भाषा के बोलने पर अधिकार नहीं हो पाता।

अन्य विषयों के अध्यापन के समान भाषा-शिक्षण के समय भी अध्यापकों को इन सूत्रों का पालन करना चाहिए –

- | | |
|-------------------------------|------------------------------|
| (i) ज्ञात से अज्ञात की ओर | (ii) सरल से जटिल की ओर, |
| (iii) स्थूल से सूक्ष्म की ओर, | (iv) विशेष से सामान्य की ओर, |
| (v) आगमन से निगमन की ओर, | (vi) पूर्ण से अंश की ओर। |

प्रथम/द्वितीय भाषा की शिक्षण प्रक्रिया से संबंधित महत्वपूर्ण बातें।

1. अभ्यास करना – भाषा- अध्यापक को इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिनसे विद्यार्थी विद्यालय तथा घर पर, निरंतर अभ्यास करता रहे।
2. आदत होना – भाषा को अर्जित करना तथा भाषा-शिक्षण को आदत-निर्माण की प्रक्रिया भी कह सकते हैं। कोई भी अशिक्षित भाषा आदि के नियमों से अनभिज्ञ होते हुए भी, जीवन भर अपनी भाषा का व्यवहार करता है। अभ्यास और आदत हो जाने पर, व्यक्ति इन दुविधाओं से मुक्त हो जाता है।
3. रुचि बनाए रखने के लिए प्रेरणा – भाषा के अध्यापक को (विशेष रूप से द्वितीय भाषा-शिक्षण में) विद्यार्थी में रुचि बनाए रखने के लिए उसे निरंतर प्रेरित करते रहना चाहिए।
4. व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान होना- भाषा-अध्यापक को विद्यार्थियों के व्यक्तिगत भेदों का ज्ञान होना चाहिए। कोई भी दो व्यक्ति एक समान नहीं होते। उनमें कई प्रकार के व्यक्तिगत भेद पाए जाते हैं यथा –
 - (i) दैहिक भेद,
 - (ii) मानसिक तथा बुद्धि सम्बन्धी भेद,
 - (iii) पारिवारिक भेद आदि

5. मौखिक कार्य पर अधिक बल – प्रायः यह देखा गया है कि चाहे प्रथम भाषा हो या द्वितीय भाषा, कक्षा में विद्यार्थी की अपेक्षा अध्यापक ही अधिक सक्रिय होता है और विद्यार्थी निष्क्रिय श्रोता बन के रह जाता है। विद्यार्थियों की सक्रियता सस्वर वाचन तथा कठिन शब्दों के अर्थ पूछने तक सीमित रहती है। भाषा को अर्जित करने की दृष्टि से, यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यार्थियों को मौखिक अभिव्यक्ति के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जाएँ।

5.5 द्वितीय भाषा के शिक्षण में आने वाले बाधाएँ –

- (1) श्रवण-स्तर- द्वितीय भाषा का विद्यार्थी, प्रथम भाषा की ध्वनि व्यवस्था के अनुरूप ही किसी ध्वनि को सुनता है, यथा –
 - (क) एक हिन्दी भाषी मराठी या मलयालम के (द्व) को स सुनता है।
 - (ख) एक बंगला भाषी (व) को (ब) सुनता है।
 - (ग) एक पंजाबी भाषी (य) को (ज) सुनता है और आधी ध्वनि (स्कू, न्द्र) को पूरी ध्वनि (सकू, नदर) के रूप में सुनता है।
- (2) उच्चारण स्तर – द्वितीय भाषा के विद्यार्थी को वाक् इन्द्रिय, प्रथम भाषा की ध्वनि व्यवस्था के अनुरूप ढकी होती है, अतः वह उच्चारण भी उसके अनुरूप ही, भिन्न प्रकार से करता है यथा –

(क) एक हिन्दी भाषी मराठी के (तिद्धक) को तिलक कहेगा। वह (मलयालम को मलयाजम) कहेगा।

(ख) एक बंगला भाषी (देवी) को (देबी) कहेगा।

(ग) एक पंजाबी भाषी (योगी) को (जोगी) और (सुरेन्द्र) को (सुरिनदर) कहेगा।

(3) वाचन—स्तर प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा की लिपि समान होने पर (यथा—हिन्दी, मराठी, नेपाली, संस्कृत) शब्दों की वर्तनी व्यवस्था थोड़ी भिन्न होने के कारण वाचन—गति तथा सस्वर वाचन के प्रवाह में कुछ न्यूनता आ जाती है।

प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा की लिपियाँ भिन्न होने पर वर्ण और ध्वनि में सह सम्बन्ध स्थापित करने में अधिक कठिनाई आती है तथा सस्वर वाचन में अच्छी गति और प्रवाह उत्पन्न होने में पर्याप्त समय लगता है।

(4) लेखन—स्तर प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा की लिपि समान होने पर वर्ण लेखन में कोई बाधा नहीं आती परन्तु वर्तनी स्तर पर प्रथम भाषा की वर्तनी व्यवस्था, द्वितीय भाषा की वर्तनी व्यवस्था पर अपना प्रभाव डालती है।

यदि प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा की लिपियाँ भिन्न—भिन्न होती है, तो वर्ण लेखन और वर्तनी व्यवस्था पर, प्रथम भाषा की लेखन और वर्तनी व्यवस्था का बोधात्मक प्रभाव पड़ता है।

(5) वाक्य—रचना—स्तर— द्वितीय भाषा का छात्र जब द्वितीय भाषा सीखता है तो प्रथम भाषा द्वितीय भाषा की वाक्य—रचना—व्यवस्था को आच्छादित कर देती है।

(6) शब्दावली स्तर— प्रत्येक भाषा—भाषी के मस्तिष्क में मातृभाषा या प्रथम भाषा की शब्दावली का केन्द्रीय अर्थ, मानसिक अर्थ को, द्वितीय भाषा के लिए भी स्वीकार उसका प्रयोग करता है, तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

(7) भाषाई सांस्कृतिक स्तर— प्रत्येक भाषा भाषी अपनी क्षेत्रीय संस्कृति तथा भाषाई संस्कृति के साथ ओतप्रोत रहता है। चिन्तन की जिस धारा से वह बाल्यावस्था से सम्बन्धित रहा है, उससे भिन्न धारा के साथ समायोजन स्थापित करने में उसे कठिनाई होना स्वाभाविक है।

अपनी प्रगति की जाँच करें।

नोट —

(अ) अपना उत्तर प्रश्न के नीचे दिये गये रिक्त स्थान में लिखिए।

(ब) अपने उत्तर की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से कीजिए।

प्र0—3 प्रथम भाषा के उद्देश्य लिखिए ?

.....

.....

प्र०-4 द्वितीय भाषा को सीखने के तरीके कौन-कौन से हैं ?

.....

.....

विद्यार्थियों प्रथम भाषा के संबंध में 10 लाईनों में अपने विचार लिखो।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6. घर एवं स्कूल में बोलने वाली भाषा (Language Spoken at home and School)

घर तथा स्कूल शिक्षा के दो विभिन्न अभिकरण हैं। स्कूल एक औपचारिक प्रकार की एंजेन्सी है, जबकि घर एक अनौपचारिक एंजेन्सी है, परन्तु दोनों का ही लक्ष्य भाषा के द्वारा बालक का व्यवहार परिवर्तन करना है। दोनों के बीच में अच्छा संबंध सभी प्रकार की परिस्थितियों में बदलाव ला सकता है।

जहाँ तक बालक के घर और स्कूल में बोलने वाली भाषा का सवाल है, उसमें भारत जैसे बहुभाषी देश में अंतर होना स्वाभाविक है। भारत देश के प्रत्येक प्रांत के अधिकांशतः जिलों के घरों में बोली जाने वाली भाषा अलग है, जबकि उस स्थान विशेष के स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली भाषा अलग-अलग है। अतः इस प्रकार

हम कह सकते हैं कि भारत वर्ष में प्रत्येक बालक की घर में बोली जाने वाली प्रत्येक भाषा या मात्र भाषा या क्षेत्रीय बोली होती है, जबकि स्कूल में पढ़ाई जाने वाली भाषा हिन्दी अंग्रेजी या अन्य प्रान्तीय भाषा होती है, इस कारण इस बहुभाषी देश में मातृभाषा या प्रथम भाषा जोकि घर में बोली जाती है, जिसे बालक बचपन से सीखता है, उसमें तथा स्कूल में सिखाई जाने वाली भाषा में बहुत अंतर होता है। यही वजह है कि प्रायः जिन बालक या व्यक्तियों को भाषा का समुचित प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता है वह भाषाओं पर प्रवीणता हासिल नहीं कर पाते हैं।

6.1 घर और स्कूल में बोलने वाली भाषा के संतुलन हेतु सुझाव—

1. अभिभावक— अध्यापक संघ की स्थापना की जानी चाहिए। उसकी सभा लगातार माह में एक बार या द्विमासिक होनी चाहिए।
2. प्रत्येक स्कूल में एक स्थानीय सलाहकार कमेटी होनी चाहिए। कुछ माता—पिता या कुछ अधिकारी इसके प्रतिनिधि हो सकते हैं। सभी शैक्षणिक मामलों में कमेटी का सलाह—मशविरा लिया जाना चाहिए। यहाँ तक कि प्रशासनिक या शिक्षण सम्बन्धी व्यक्ति का चुनाव भी छोड़ा जा सकता है। अध्यापकों द्वारा विशेष समय पर बच्चों के घरों में जाना मात्र औपचारिक होना चाहिए, परन्तु अध्यापक द्वारा बच्चों को उनकी बीमारी और अन्य प्रतिकूल—अनुकूल स्थितियों में घर में मिलना उनके सम्बन्धों को और दृढ़ करेगा जो तत्पश्चात् स्कूल और घर के सम्बन्धों को मजबूत करेगा।
3. स्कूल प्रांगण स्थानीय जन—साधारण के लिए खोल देना चाहिए। पुस्तकालय का प्रयोग बच्चों के माता—पिता द्वारा भी किए जाने की छूट होनी चाहिए। यही नहीं स्कूल के खेल—मैदान भी स्थानीय बच्चों के लिए खोल देने चाहिए।
4. राष्ट्रीय त्योहार व अन्य सभाओं में सभी भाग ले सकते हैं। इसमें बच्चों के माता—पिता भी आमन्त्रित किए जा सकते हैं।
5. स्कूल प्रशासन को विवाह आदि अवसरों के लिए स्कूल—भवन का प्रयोग स्कूल समय के बाद या छुट्टियों में करने की छूट दे देनी चाहिए। इसके लिए उनसे केवल आवश्यक व्यय जैसे पानी, बिजली आदि ही लेना चाहिए।
6. अध्यापक को बच्चे की बीमारी के समय उसके घर जाना चाहिये समस्या प्रधान विद्यार्थियों के घरों में भी अध्यापकों को समय—समय पर जाना चाहिये ताकि समस्याओं का समाधान निकाला जा सके। इससे स्कूल एवं घर एक दूसरे के सहयोग से एक दूसरे के पूरक बन जाएंगे।

7. विद्यार्थियों, माता-पिता एवं अध्यापकों को साझे खेलों का आयोजन करना चाहिए। इसी प्रकार खेलों में भिन्नता में मैचों का आयोजन भी हो सकता है। इससे स्वस्थ वातावरण उत्पन्न होगा और इससे स्कूल की व्यवस्था भी ठीक ढंग से चल सकेगी।
8. बच्चों, माता-पिता एवं अध्यापकों की शैक्षणिक कान्फ्रेंसिंग का भी आयोजन समय-समय पर किया जा सकता है, जिनमें शिक्षा से संबंधित समस्याओं पर आधारित विषय पर चर्चा हो सकती है।
9. बच्चों की उन्नति रिपोर्ट्स माता-पिता को भेजी जा सकती है जिन में उनकी उपस्थिति, परीक्षाओं का मूल्यांकन, अन्य प्राप्तियां और स्वास्थ्य संबंधी सूचनाएं दर्ज हो सकती है। इससे माता-पिता एवं स्कूल के संबंध प्रगाढ़ हो जाते हैं।
10. विना शक के विद्यालय विद्यार्थियों और उनके माता-पिता को दिशा-निर्देश देने में एक सशक्त भूमिका निभा सकते हैं जिससे विद्यार्थियों का सम्पूर्ण विकास हो सके। इस संबंध में अध्यापक एवं विद्यालय माता-पिता से भी दिशा निर्देश ले सकते हैं। उन से ली गई सहायता से निश्चित रूप से समस्याओं को सुलझाने में आसानी हो सकती है।

घर एवं स्कूल की पूरक प्रकृति के बारे विनोबा भावे ने कहा है 'एक आदर्श स्थिति में घर स्कूल बन जाना चाहिये और स्कूल और स्कूल घर हो जाना चाहिए।'

इस प्रकार स्कूल एक संक्षिप्त समाज है। स्कूल और घर भाषा के विकास में सहयोग करने वाली संस्थाएं हैं ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। एक अच्छा स्कूल अच्छा घर बनाता है और एक अच्छा घर स्कूल को एक अच्छी आकृति देने के योग्य होता है, इन दोनों के आपसी समन्वय के कारण ही भाषा का विकास होता है।

इकाई सारांश — इकाई नं०-1 भाषा की प्रकृति एवं कार्य से संबंधित है, जिसमें बोलचाल की भाषा तथा मानव भाषा को महत्व दिया गया है।

भाषा और संस्कृति में बोलने और लिखने एवं समझने पर विचारपूर्वक अध्ययन किया गया है, जिससे विद्यार्थी देश के अच्छे नागरिक बन सके और देश निर्माण में अपनी भूमिका निभा सके।

प्रथम भाषा तथा द्वितीय भाषा का विद्यार्थियों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, बताया गया है।

विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली भाषा और घर में बोली जाने वाली भाषा का सामंजस्य स्थापित किया गया है।

दीर्घ एवं लघु प्रश्न –

- (1) भाषा की प्रकृति पर अपने विचार लिखें ?
- (2) आधुनिक मानक भाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालियें ?
- (3) भाषा पर संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
- (4) द्वितीय भाषा के उद्देश्य लिखिए ?

लघु प्रश्न –

- (1) संस्कृति का अर्थ एवं विशेषताएं लिखिए ?
- (2) प्रथम भाषा क्या है ?

इकाई के उत्तरों की जाँच कीजिए –

प्रश्न –1 भाषा के चार आधार हैं –

- (1) भौतिक आधार, (2) मनोवैज्ञानिक या मानसिक आधार
- (3) सामाजिक आधार (4) सांस्कृतिक आधार

प्रश्न –2 भाषा के दो रूप हैं –

- (1) प्रयोग की दृष्टि से (2) व्यवहारिक की दृष्टि से

प्रश्न –3 (1) व्यक्तित्व का विकास (2) नागरिकता का विकास (3) मानसिक विकास (4) नैतिक विकास (5) सामाजिक विकास (6) विचार विनिमय की कुशलता का विकास (7) जीवकोपार्जन की क्षमता का विकास (8) सांस्कृतिक चेतना का विकास (9) सौन्दर्य बोध तथा रसानुभूति का विकास (10) सृजनात्मक प्रतिभा का विकास

प्रश्न –4 (1) द्वितीय भाषा के मातृ-भाषा भाषियों के संपर्क में आकर
(2) पुस्तकों से
(3) शिक्षा आदि के माध्यम से

नोट –संदर्भग्रन्थ सूची दोनों इकाईयों की साथ में अंत में दी गई है।